सत्यध्वज

वर्ष - 16
अंक - 47

गुरूघासीदास एवं उनके सतनाम आन्दोलन पर आधारित
एकमात्र अनियतकालीन हिन्दी पुस्तक

जनवरी, फरवरी, मार्च 2005

सम्पादक
दादूलाल जोशी 'फरहद'

सहयोग राशि
25 रूपये मात्र

सत्यध्वज

गुरुघासीदास एवं उनके सतनाम आन्दोलन पर आधारित एकमात्र अनियतकालीन हिन्दी पुस्तक

जनवरी, फरवरी, मार्च - 2005

वर्ष-16 अंक-47

-: इस अंक में :-

दादूलाल जोशी ''फरहद'' मु. फरहद, पो. सोमनी जि. राजनांदगांव छत्तीसगढ़ द्वारा प्रकाशित एवं प्रसारित

✧ सत्यध्वज बुलेटिन अनियतकालीन और अव्यावसायिक

✧ सम्पादनप्रबंधन पूर्णतः अवैतनिक

टीप :- 1. सत्यध्वज में प्रकाशित रचनाओं में उल्लेखित विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं जो कि उनके समझ और ज्ञान पर आधारित है। उन विचारों से संपादक मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

2. सत्यध्वज का प्रकाशन गुरू घासीदास जी के व्यक्तित्व और कृतित्व से संबंधित साहित्यिक अभाव की पूर्ति का प्रयास मात्र है। अतएव इस संबंध में किसी व्यक्तित्व संस्था अथवा समूह के द्वारा उठाये गये किसी भी तरह के विवाद स्वीकार्य नहीं है।

पत्र व्यवहार का पता

दादूलाल जोशी ''फरहद''
संपादक सत्यध्वज पत्रिका
मु. फरहद, पो. सोमनी
जि. राजनांदगांव छत्तीसगढ़
फोन : 07744-220814
मो. नं. : 9302835463

सहयोग राशि
मात्र-25 रूपये

सम्पादकीय पथ से भटकने का दुष्परिणाम

इस सृष्टि में प्रत्येक वस्तु के पथ और गति निर्धारित होते हैं। जो भी प्राणी या पदार्थ अपने पथ और गति पर चलते रहते हैं; उनके विकास और सुरक्षा सुनिश्चित हो जाते हैं किन्तु जो अपने पथ और गति से विचलित हो जाते हैं या भटक जाते है; उनका विकास रूक जाता है; तथा वे असुरक्षित भी हो जाते हैं। इस पृथ्वी का एक निर्धारित पथ है तथा उसकी एक निश्चित गति है। जिनके कारण धरती में दिन और रात होते हैं एवं ऋतुएं बदलती रहती हैं। यदि पृथ्वी के पथ में भटकाव आ जाये और उसकी गति कम या अधिक हो जाये तो धरती पर विनाशकारी प्रभाव पड़ेगा। सब कुछ उलट-पलट हो जायेगा। इसी तरह सामाजिक, धार्मिक और अन्य व्यवस्थाओं में भी होता है।

परम पूज्य गुरूघासीदास जी ने अपने अनुयायियों के लिए एक निश्चित पथ दिखाया है। पथ को पंथ भी कहते हैं। वह पथ है उनके सात सिद्धांत, जिनका पालन करते हुए आगे बढ़ना होता है। उनके दिखाये पथ पर चलकर दो सदी से सतनामी समाज हर तरह की उन्नति करता हुआ सुरक्षित जीवन यापन करता आ रहा है। देश की आजादी के पूर्व तक लोग गुरूबाबा के पथ पर चलते रहे किन्तु आजादी के बाद से यह देखने में आ रहा है कि सतनामी समाज के कुछ प्रतिशत लोग पथ से भटकते हुए दिखाई देते हैं। सत्य-अहिंसा का पालन करते हुए शाकाहारी, सदांचारी और एकता के सूत्र में बंधकर आपसी प्रेम और सहंयोग के साथ जीने की शिक्षा गुरूबाबा ने दी है। आज आधुनिक युग के प्रभाव में आकर कुछ लोग खान-पान और रहन-सहन में बदलाव ला रहे हैं जिसका फल यह हो रहा है कि समाज के ऐसे लोग आर्थिक हानि और शारीरिक-मानसिक रोग के शिकार हो रहे हैं।

गुरूबाबा का सतनाम आन्दोलन मानव की स्वतंत्रता तथा उसके सर्वांगीण विकास पर आधारित था। यही वजह है कि सतनामी समाज में गुरू परिवार के होते हुए भी तानाशाही अथवा एकाधिकार की भावना नहीं है। उन्होंने पूरे समाज को स्वतंत्रता पूर्वक चिन्तन-मनन और धार्मिक क्रियाकलाप करने की छूट दे रखी है। संस्था-संगठन बनाकर सामूहिक उन्नति के रास्ते भी खुले रखे हैं। अतः सतनामी समाज ही एक ऐसा समाज है जहाँ धार्मिक सामाजिक कट्टरता नहीं हैं किन्तु इस स्वतंत्रता को कुछ लोग न समझते हुए उच्छृंखल आचरण करने लगे हैं। जिसके कारण उनका व्यक्तिगत नुकसान हो रहा है और समाज कमजोर होता जा रहा है। अतः आज हम सबको गंभीरता से विचार करना होगा कि सतनामी समाज के प्रत्येक

सदस्य गुरू बाबा के बताये पथ से विचलित न हो। यह बात सभी संतों को ध्यान में रखना चाहिए कि गुरूघासीदास जी के सभी उपदेश और सिद्धांत बेहद सहज-सरल हैं उनके बताये पथ साफ सुथरा है। उसमें चलने से किसी के पैर में कांटे नहीं चुभते हैं। वह उबड़-खाबड़ और पथरीला नही है। सीधा और सपाट है। अतः उस पथ पर सबको चलना चाहिए। पथ से भटकना नहीं चाहिए।

गुरूबाबा ने सतनाम आन्दोलन का जो ध्वज उठाया वह श्वेत है। यह सफेद रंग सरलता और सादगी का प्रतीक है किन्तु कुछ लोग उनके सहज-सरल उपदेशों और उनके ध्वज के सफेद रंग को रहस्यमय बनाने का प्रयास कर रहे हैं। एक ही रंग सफेद है जिसमें किसी भी प्रकार की रहस्यमयता और अतिरेक की भावना नही हैं फिर भी मनमाने ढ़ंग से सफेद रंग के प्रयोग पर अति करवाना उचित नही हैं। यहां तक कि सफेद रंग के अलावा बाकी अन्य सभी रंगों को हेय बताने का प्रयास किया जा रहा है जो कि मानव के संतुलित जीवन के लिए उपयोगी नही है। यह ऐतिहासिक सच्चाई है कि सतनाम धर्म की स्थापना के शुरूआती दिनों में सतनाम की उपासना सूर्य को साक्षी मानकर की जाती थी। सूर्य की ओर मुंह करके ही सतनाम की आराधना होती थी। अतः सूर्य की शक्ति और प्रभाव को गुरूबाबा भलिभांति जानते थे। सूरज में सात रंग होते हैं। सातो रंगों को एक निर्धारित मात्रा में मिला दिया जाय तो वह सफेद हो जाता है। अतः सफेद रंग में सातों रंगों की अनुभूति रहती है। सफेद रंग एक मात्र अस्तित्व वाला नही है बल्कि वह सात रंगों का समुच्चय है। इसीलिए सूर्य के प्रकाश के आधार पर ही सतनामी संस्कृति में सात अंक का महत्वपूर्ण स्थान रखा गया है। हम आधुनिक वैज्ञानिक युग में जी रहे हैं। आज पूरा विश्व एक गांव की तरह बन गया है। अतः हमें किसी एक वस्तु या रंग के प्रति अति आग्रही नहीं होना चाहिए। ऐसा होने पर संतुलित और स्वाभाविक जीवन जीने में कठिनाई आयेगी।

आज आवश्यकता इस बात की है कि गुरूबाबा के द्वारा स्थापित संस्कृति को उसके वास्तविक और व्यावहारिक अर्थ में समझकर उसे लोग दृढ़ता पूर्वक अपनाएं और गुरूबाबा के दिखाये पथ पर निष्ठापूर्वक चलते रहें तभी सबका कल्याण हो सकता है।

दादूलाल जोशी "फरहद"

सम्पादक

पाठको के पत्र

सम्माननीय जोशी जी,

उड़ीसा कालाहांडी चीचीया सतनामी समाज के तरफ से आपको और सत्यध्वज पत्रिका के समस्त सदस्यों को कोटि-कोटि प्रणाम है ! जोशी जी जब से सत्यध्वज पत्रिका मेरे नाम से भेज रहे हैं; उस दिन से उड़ीसा तथा कालाहांडी में, सतनामी सम्मेलन तथा सभा में चर्चा करता हूँ। जब हमारे पंथी दल दूसरे गांव में जा रहे हैं, तो वहाँ भी सदस्य बनाने के लिए कोशिश करता हूँ।

हमारे गाँव में, 100 घर के सतनामी हैं। बाबा घासीदास के जैतखाम भी है। हर साल 18 दिसम्बर मनाते हैं और गिरौदधाम भी जा रहे हैं।

मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि सत्यध्वज के नाम से एक सम्मेलन रायपुर में, रखा जाये, जितना खर्च लगेगा उसे हमारे सत्यध्वज के सदस्यों से चंदा कलेक्शन करके इंतजाम किया जाये तो हम और हमारा समाज आगे बढ़ेगा।

शेषदेव सोनवानी
ग्राम + पो. - चीचीया, व्हाया - सोषीया
जिला - कालाहांडी (उड़ीसा)

आदरणीय जोशी जी

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई है कि संत शिरोमणी गुरूघासीदास बाबा एवं उनके सतनाम आन्दोलन पर राष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका ''सत्यध्वज'' का प्रकाशन विगत 13, 14 वर्षों से किया जा रहा है। निसंदेह यह पत्रिका मानव समाज को एकता से सूत्र में बांधकर एक नया पैगाम देगी। आने वाला समय दलितों का होगा।

मैं अपना लेख ''दलित स्त्री की जिजीविषा'' सत्यध्वज में प्रकाशन के लिए प्रेषित कर रहा हूँ यदि तर्क का अभाव या कोई त्रुटि हो तो सुधारने की कृपा करेंगे। पत्रिका का वार्षिक सदस्य बनने के लिए क्या करना होगा कृपया जानकारी प्रदान कीजिए।

लोकेश्वर प्रसाद सिन्हा
मु.पो.-बावनकेरा, जिला-महासमुंद

"सतनाम आन्दोलन का क्रियात्मक पक्ष"

डॉ स्वामीराम बंजारे "सजल"

विभागाध्यक्ष - हिन्दी विभाग, भानुप्रतापदेव

शास. स्नातकोत्तर , महाविद्यालय, कांकेर (छ.ग.)

गुरू घासीदास के ज्ञानात्मक संवेदन में दलित शोषित मनुष्य की पीड़ा समायी हुई थी। गुरू घासीदास मानवतावादी थे। इसलिए उनका दृष्टिकोण मानव शक्ति और उसकी पहचान पर केन्द्रित था। जब तक हमारे समाज में जातियां विद्यमान है, छुआछूत व भेदभाव विद्यामान है, तब तक समानता, सद्भाव तथा भाईचारे की स्थापना सर्वाधिक दुष्कर कार्य है। जब तक सवर्ण हिन्दुओं का आत्याचार दलित शोषितों पर जारी रहेगा तब तक स्वस्थ समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। अपने जीवन काल में गुरू घासीदास ने जातियों में जकड़े दलितों के शोषण को देखा था, उनके जातीय अपमान को देखा था; यही कारण है कि उन्होंने जातिविहीन समता मूलक समाज की संरचना का विचार रखा जो किसी भी स्तर पर छोटे-बड़े, ऊँच-नीच व भेदभाव पर आधारित नहीं होगा।

गुरू घासीदास ने दलित वर्ग के ऊन सभी जाति के लोगों को अपने पंथ में दीक्षा दी जो उनके स्वस्थ व निर्विकार विचारों से सहमत हुए। पंथी गीतों में गाते हैं -

सतनामी के संख्या दिन-दिन बाढ़त जावै भारी,
गोंड़, कंवर, कोरी, पासी, चमरा, महरा, मोची।
राऊत औ रोहिदास तेली सतनाम ल गाईन
अहीर, ब्रजवाती, मवली, बरई अऊ तमोली,
राऊत, गोवारी, बंजारा, हरबोला औ गोधली
गाड़रिया, गुण्डेर, धुनकर, धनका कोडार
लोहा पीटा जोगी नाथ के।
भुँजी, भाट, चारण, सुतिया, धोबी अऊ धनवार
ढीमर, केंवट, मांझी, कोस्टा, कसेर अऊ सोनार
तुरहा, कश्यप, निषाद, बाथम, सिगरहा
ठोली, दमामी, हरिदास।
डड़सेना, कलौटा, कोलवा, तेली अऊ कोटवार
राजगिरी, चित्रावर, दर्जी, सिपी अऊ मरार

हम सब इही म गिनाथन सतनामी जात के ।।

गुरू घासीदास का विचार ज्ञान और कार्मिक शक्ति पर आधारित था। इसलिए उन्होंने हर ग्राह्य और अग्राह्य को तर्क की कसौटी पर कस कर देखा। चाहे वह विचार सामाजिक संगठन के लिए हो, भाईचारे की स्थापना के लिए हो या सतनाम की उपासना के लिए हो तथा विभिन्न प्रकार की शिक्षा व संस्कारगत मान्यताओं के लिए हो इस सभी को उन्होंने तर्क और ज्ञान की कसौटी पर कस कर देखा-परखा, जिसे खरा पाया उसे ग्राह्य बताया। गुरू घासीदास ने ऊन सभी अच्छाइयों को ग्रहण किया जो मानव समाज की मुक्ति के मार्ग प्रशस्त करते हैं तथा उस सभी बुराईयों से दूर रहने को कहा जो मानव और समाज को पशुता की श्रेणी में पहुँचा देते हैं। यही गुरू घासीदास का मानवतावादी उच्च दृष्टिकोण है। जाति विहीन स्वतंत्र और उन्मुक्त सामाजिक संरचना के लिए गुरू घासीदास ने सतनाम उपासकों का संघ बनाया और जातिवाद के विरूद्ध क्रांति की लहरें पैदा की।

गुरू घासीदास के सामाजिक तथा धार्मिक संघर्ष से उपजे विचार आज की उर्वरा भूमि में और अधिक विकसित तथा हरे-भरे होने चाहिए। आवश्यकता तो सिर्फ इतनी ही है कि हम उनके विचारों को सिंचित करते रहें तथा इन्हें पल्लवित और पुष्पित करने का प्रयास करते रहें। इसे समाज की ओर से और अधिक खाद और पानी दें। देश की आजादी के पूर्व सतनामी समाज के साथ जो हुआ सो हुआ। उस काले इतिहास के पन्ने हमारी नजरों के सामने हैं। सामाजिक परिस्थितियों को देखते हुए तथा इतिहास के उन काले पन्नों से सबक लेते हुए, नए एवं स्वस्थ समाज की संरचना की ओर ध्यान देना हमारा प्रमुख दायित्व हो जाता है। जीवन में सत्य को न जानने, सतकर्म को व्यवहार में परिणित न करने तथा आपस में सद्भाव कायम नहीं कर पाने के कारण आज भी हम बंटे हुए हैं। सतनामी समाज गुरू घासीदास के उपदेशों, सिद्धान्तों एवं क्रिया-कलापों को ध्यान में रखकर आत्म मंथन करे तो उसे अपनी सारी कमजोरी मालूम पड़ जाएगी।

अपने शोषण तथा उत्पीड़न के लिए सामाजिक तौर पर इतिहास को दोष देना उचित नहीं, जो हुआ सो हुआ अब भूत की अपेक्षा वर्तमान और भविष्य के संबंध में चिन्तन करना ज्यादा महत्वपूर्ण है। गुरू घासीदास ने अपने विचारों में आत्ममंथन और आत्मालोचन पर विशेष बल दिया था। इन्हीं तत्वों पर ध्यान देना सतनाम पंथ के आदर्शों का पालन होगा। शिक्षा, संस्कार, साहित्य, राजनीति, दर्शन, विज्ञान, समाज विज्ञान, अर्थात् मानव विकास के हर पहलू का ज्ञान हासिल करते हुए इन पर अपना अधिकार जमाना सतनामी समाज का ध्येय होना चाहिए। इस विज्ञान के युग में भूमि, मकान सम्पत्ति, दरिद्रता, पिछड़ेपन आदि को

लेकर आपस में लड़ते रहना तथा न्यायालयीन प्रकरणों में उलझे रहकर रही-सही सम्पत्ति को लुटा देना सतनामी समाज के लिए आत्मघाती होगा। तथा कथित सोच वाले लोग आज भी हमें इन्हीं उलझनों में रखकर हमारे अधिकारों से हमें वंचित रखना चाहते हैं। इन साजिशों से हमें सावधान रहना है। पिछली पीढ़ी ने समाज के उद्धार के लिए क्या किया, इसकी समीक्षा करने के बजाय अगर हम इस बात की समीक्षा करना शुरू करें कि हम पढ़ लिखकर अपने समाज के लिए कितना कुछ कर सके हैं, कर रहे हैं और कितना कुछ करना शेष है ? तो सामाजिक रूप में हमारे सारे प्रश्नों के उत्तर मिल जाएँगे। सतनाम की विचार धारा ने गूरू घासीदास जी के समय में छ.ग. अंचल में एक स्वस्थ समाज को जन्म दिया था उसे फिर से स्थापित करने की जरूरत है। अपने पवित्र और सादगी पूर्ण जीवन तथा सभी मानव समाज के प्रति समानता और श्रद्धाभाव रखने के कारण वे सर्वत्र आदर के पात्र थे। सतनाम सत्यता और पवित्रता का घोतक है। सत्य और मानवता की रक्षा के निमित संघर्ष करते - करते अपने प्राणों की आहुति हर सतनामी का कर्त्तव्य है। इसका बोध सतनामी को होना चाहिए। सतनामी लोगों की सादी रहन-सहन, उनके साहस, संगठन की योग्यता तथा भेदभाव रहित जीवन-यापन भी तथा-कथितों के ईर्ष्या का कारण हो सकता है, परन्तु इससे हमारी ऊर्जा कम नहीं होगी, इससे सतनाम की विचारधारा को फैलाने में बल मिलेगा। इसे चुनौती के रूप में लेते हुए सतनामी बन्धु प्राण-प्रण से जुट जाँए।

---0---

छत्तीसगढ़ी कविता

विपत के बरखा म, जिनगी ह उलोहे हे।
आफद के परवा ल, मुड़ी म ये बोहे हे ।।
बखत के समुंदर म, काया ल चिभोरे हे।
फकत ये पीरा म, छंइहा ल बटोरे हे ।।
दुख के धुंगियाँ म, सांसा ल भिगोये हे।
भोंभरा के ढेखरा म, आँखी मूंदे लोरे हे।
फर अस भसकटिया के, पोठ हरियाये हे।
धतूरा के फूल असन, दांत निपोरे हे ।।
जामे हे तीन पनियाँ साही, संसो फेर फिकर हे।
बरहा अस सांस ह धपोरे के धपोरे हे ।।

डॉ. सन्तराम देशमुख "विमल"
संस्थापक दीपाक्षर साहित्य समिति दुर्ग

गुरू घासीदास जयन्ती के जन्मदाता - स्व. नकुल ढ़ीढ़ी जी

- देवचंद बंजारे

गुरूकृपा सदन, मेरे गाँव, वार्ड नं. 01, अं.चौकी, जिला-राजनांदगांव

छत्तीसगढ़ की माटी के महान सपूत और गुरूघासीदास जयन्ती के जन्मदाता स्व. नकुल ढ़ीढ़ी जी का जन्म 12-04-1914 को ग्राम भोंरिग तहसील महासमुंद जिला-रायपुर में हुआ था। आपने सतनामी जाति में जन्म लेकर समाज व देश को गौरवान्वित किया है। आपके आदर्शों के मिसाल में सतनामी समाज सदा नत मस्तक रहेगा।

वह काल था जब सतनामी समाज अपने दुख व पीड़ा से सिसक रहा था और नन्हे-नन्हे फूल भी मुरझाये हुए थे। सतनामी समाज के लोग अत्याचार, अन्याय, असमानता, अस्पृश्यता, ऊँच-नीच, भेद-भाव के कलुषित जीवन जीने के लिए मजबूर थे। ऐसे संकट की बेला में आपने गुरू घासीदास जयंती का प्रथम आयोजन 18 दिसम्बर 1938 में ग्राम भोरिंग में किया। भव्य व विशाल सभा में जन समुदाय की भीड़ उमड़ पड़ी। इस जयंती कार्यक्रम का प्रचार-प्रसार के लिए व्यापक रूप से तैयारी की गई थी। छत्तीसगढ़ के संत, महंत, राजमहंत एवं ग्रामीण लोगों ने इसमें बढ़-चढ़कर भाग लिया। पूरब की नयी किरण ग्राम भोरिंग में प्रस्फुटित हुई। इस नयी किरण से छत्तीसगढ़ के कोने-कोने में खुशियाँ और सतनाम का ध्वज 'श्वेत पताका' हवा में लहराने लगा। ग्राम भोंरिग में सम्पादित प्रथम गुरू घासीदास जयन्ती ने सतनामी समाज में तहलका मचा दिया। इस जयन्ती में जय सतनाम ! जय सतनाम !, जो सतनामी से टकरायेगा, वो माटी में चूर-चूर हो जायेगा। के नारे गूंजते रहे। नकुल ढ़ीढ़ी जी ने भाषण दिया था - हम सब एक हैं। जो मानवता से घृणा करते है वे सच्चे अछूत है। हमारा विरोध हिन्दुओं से नहीं हिन्दू व्यवस्था से है। देवी-देवताओं की पूजा करना, जनेऊ धारण करना एक धोखा है। मृत्युभोज परित्याग करो। गंदे काम नहीं करना। जैसे मल उठाना, बाल काटना, अन्य जाति का कपड़ा धोना, वंशवाद को नहीं मानना आदि भाषण का मुख्य अंश है।

आप माता-पिता के अकेले संतान थे। आपका पैतृक अचल सम्पत्ति 80 एकड़ भूमि थी तथा आप एक सम्पन्न कृषक थे। आपने प्राथमिक शिक्षा ग्राम भोंरिग में सन् 1926 में पास किया। माता-पिता के दुलरूवा होने के कारण पढ़ाई थम गई। आपके कुशाग्र बुद्धि तथा तेजस्वी भाषण से जनता में खलबली मच जाती थी। आपका स्वभाव, मृदुल, धैर्य, व

साहसी कदम एक मिसाल बन चुका था। दलित शोषित समाज में व्याप्त अत्याचार, बलात्कार, छुआछूत की प्रताड़ना से आक्रोशित रहते थे। आपके राजनीतिक गुरू श्री एम. डी. एम. सिंह थे। इनके सम्पर्क में आने से सामाजिक संघर्ष एवं दलित शोषित समाज में अत्याचार, छूआछूत खत्म करने सक्रिय हो गये।

नकुल ढ़ीढ़ी जी ने गुरूघासीदास जी की भांति सामाजिक क्रांति का बिगुल फूंक दिया। वे अपने लिए न जीकर औरों के लिए जीना सौभाग्य मानते थे। आपको समाज विरोधी सवर्णों ने नीचा दिखाने का प्रयास भी किया और ईसाई धर्म प्रचारक कहते थे - सरकार द्वारा आपके ऊपर 36 मुकदमा चलाया गया जिसे आप जीत गये।

सामाजिक राजनीतिक गतिविधियाँ -

1) अखिल भारतीय सतनामी महासभा की स्थापना (प.क्र. 75) सन् 1948 से 1973 तक महामंत्री रहे।

2) शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन 1950 में सदस्य एवं महाकौशल के महामंत्री चुने गये।

3) लोकसभा के प्रत्याशी स्वरूप सन् 1952 में चुनाव लड़े परंतु सफलता हासिल नहीं हुई।

4) रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया शाखा छत्तीसगढ़ (सन् 1956 में) के महामंत्री और केन्द्रीय प्रतिनिधि चुने गये।

आप सन् 1949 में किशुनदास गेन्ड्रे, सुकुलदास बंजारे, बाबू हरिदास आवड़े एवं बाबा साहब डॉ. भीमराव आम्बेडकर के सम्पर्क में आये जिससे राजनैतिक कला एवं ज्ञान में प्रशिक्षित हुए। सन् 1956 में डॉ. आम्बेडकर की सलाह से बौद्ध धर्म का गहन अध्ययन किया। आपने गौंटिया घर जन्म लेकर गरीबों की सेवा की और जिन्दगी भर सतनामी समाज में गरीब की तरह घूम-घूम कर सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक जन जागृति हेतु लोगों को एकता का पाठ पढ़ाये जिससे ढ़ीढ़ी जी सवर्णों केछद्म चाल से वाकिफ हुए।

भीष्म पितामह की तरह प्रतिज्ञा -

भारत की सामाजिक व्यवस्था दूषित तथा मूलवासियों के साथ छुआछूत की भावना से सतनामी ग्रसित थे इसलिए सवर्णों की तरह नहीं मिला आपने प्रतिज्ञा किया था कि

जब तक हर ग्राम के सतनामी को नाई धोबी उपलब्ध नहीं होगा तक तक केश कर्तन नहीं करवाऊंगा। आपने इस भीषण प्रतिज्ञा को आजीवन निभाया। इसलिए आपको ''भीष्म पितामह'' के नाम से सम्बोधित करते हुए सम्मान देते हैं। आप अनेक संस्थाओं में महामंत्री के पद में विराजमान थे इसलिए आपको मंत्री जी भी कहते थे।

नकुल ढ़ीढ़ी के विचार आज भी प्रासंगिक -

1) सतनामी का मरना साधारण है जब बाबा साहब डॉ. भीमराव आम्बेडकर जैसा महामानव भारत का नहीं हो सकता, तो अन्य की क्या बात करें।

2) हमें धोखे में रखता है गरीबी हटाने का बजट बनाता है। हमें स्वयं के प्रयास से गरीबी हटाना पड़ेगा।

3) गुरूघासीदास जी के क्रांतिकारी सतनाम आंदोलन को हमारी अशिक्षा बुद्धि हीनता ने एक जाति विशेष तक सीमित रखा है।

4) हम आपसी मनमुटाव और मतभेदों को अपने बीच न पनपने दें। यही घर का भेदी लंका ढ़हाय' चरितार्थ होती है।

5) अपने वोट का मूल्य समझें। एक वोट राजा को रंक और रंक को राजा बना देता है, इसलिए अपने वोट को पानी के मोल न बेचें। जो हमें कुछ देकर वोट लेता है वो हमें कुछ भी नहीं देता और पांच साल तक पूछने तक नहीं आता, ऐसे नेता को विजयी बनाना धोबी के कुत्ता के समान है।

6) आप उच्च जीवन-उच्च विचार के प्रबल पक्षधर थे, आप कहते थे कि गुरू घासीदास के क्रांतिकारी सतनाम आंदोलन को जाति विशेष वर्ग तक सीमित कर रखा है। यह हमारी अशिक्षा, बुद्धिहीनता का परिचय है बल्कि उनके संदेश मानव समाज के लिए सूर्य के समान असीमित कोष, अथाह खजाना है।

7) आप हरिजन शब्द का व्याख्या करते हुए कहते थे कि हरिजन का अर्थ है हराम का औलाद है अर्थात् जिनकी मां होती है पर पिता का पता नहीं। कालान्तर में हरिजन शब्द का अर्थ - भगवान के लोग है तो सवर्ण किसका है ?

8) आप कहा करते थे - मानव धर्म अर्थात् सतनाम धर्म ही उत्तम है। जहां मानव-मानव में भेदभाव न हो, असमानता न हो। जाति-पाति, ऊंच नीच, छुआछूत का भेद न हो।

मनखे मनखे एक बरोबर
नरवा नदिया तरिया एक सरोवर
मानव धर्म अपने घर-बरोबर
सत्य अहिंसा प्रेम का तिरबेनी धरोहर
मानव सेवा और जीव जंतुओं की सेवा करना ही मानवता का प्रतीक है। सबको एक समान समझना ही सतनाम धर्म है।

9) शिक्षित बनो - संगठित रहो - संघर्ष करो। अपने हक और अधिकार के लिए धैर्य और साहस से संघर्ष करो।

निधन -

आपका निधन 16 अगस्त 1975 को हृदयाघात से हुआ। यह दिन सतनामी समाज के लिए वज्राघात था। आप हमेशा के लिए चिर निद्रा में निमग्न हो गये। आज आप हमारे बीच नहीं हैं लेकिन आपके द्वारा बीजारोपित पथ दिग्दर्शन के रूप में अनुकरणीय है। आपका चिंतन, मनन और संघर्षशील व्यक्तित्व ही हमारे लिए संदेश एवं प्रेरणा स्त्रोत है।

----0----

चाहत

(किशोर कमल से)

- कु. देवसरे
ग्राम - ठाकुरटोला पो. सोमनी
जिला - राजनांदगांव

तुम्हें चाहें भी तो चाहें कैसे।
ये दिल का दर्द बताये भी तो कैसे ॥
तुम्हारी हर अदा पे ये दिल मरता है
ये तुम्हें समझाये भी तो कैसे ॥
तुमने तो कभी हमारे दिल की गहराइयों
में देखा नहीं उतरकर।
तुम्हारे दिल में क्या है ये पता लगाये भी तो कैसे।
इन नजरों में जो कशीश है
उसे समझना है मुश्किल।
हमारे दिल की जो तड़प है
उसे समझाना है मुश्किल ॥
तुम मागों तो जान भी अपनी दे दें।
मेरी जान तुम्हें इंकार कर पाना है मुश्किल।

(विचार सेवा)

प्रेम का अर्थ है जीवन में एक महत् क्रांति !

जे. कृष्णमूर्ति

परस्पर संबंधों को स्थायी और सुरक्षित बनाये रखने की चाह अनिवार्य रूप से दुख और भय उत्पन्न करती है. सुरक्षा की यह खोज असुरक्षा को जन्म देती है. क्या आपने अपने किसी भी परस्पर संबंध में यह सुरक्षा पायी है ? किसी में भी ? खासकर प्रेम संबंधों में अधिकांश लोग यह सुरक्षा चाहते हैं कि हम एक-दूसरे को सदा प्रेम करते रहें. लेकिन जहां दोनों में से प्रत्येक व्यक्ति अपनी ही सुरक्षा और अपना ही रास्ता खोज रहा है, वहां क्या प्रेम हो सकता है ? हमें इसीलिए नहीं मिलता क्योंकि हम प्रेम करना नहीं जानते.

प्रेम क्या है । इस शब्द का दुरूपयोग कर इसे इतना भ्रष्ट कर दिया गया है कि सच पूछिए तो मेरी इच्छी ही नहीं होती कि इस शब्द का प्रयोग भी कहीं करूं. जहां देखिए हर कोई प्रेम की चर्चा कर रहा है-हर पत्रिका, हर अखबार, हर धर्मप्रचारक प्रेम पर बोले जा है. मुझे अपने देश से प्रेम है, मुझे उस पर्वत से प्रेम है, मुझे सुख से प्रेम है, मैं अपनी पत्नी से प्रेम करता हूं, मुझे ईश्वर से प्रेम है. क्या प्रेम एक विचार है, एक धारणा है ? आप ईश्वर से प्रेम करते हैं, तो इसका क्या अर्थ है ? इसका अर्थ है कि आप अपनी ही कल्पना के फैलाव और प्रक्षेपण को प्रेम करते हैं. अपने ही विचारों,भावों और कपोल कल्पनाओं को अपने मन के अनुसार धार्मिकता का लिबास पहना कर उसे प्रेम करते हैं. इसलिए यह कहना कि मैं ईश्वर से प्रेम करता हूं, बकवास के सिवा और कुछ नहीं. जब आप ईश्वर की पूजा करते है, तो वस्तुतः आप अपनी ही पूजा कर रहे है - और यह प्रेम नहीं है.

यह मानवीय वस्तु जिसे प्रेम कहा जाता है, चूंकि हमारी पकड़ में नहीं आती, इसलिए हम सिद्धातों में भटक जाते हैं; कल्पनाओं और भावनाओं में बहक जाते हैं. प्रेम मनुष्य की सभी समस्याओं, कठिनाइयों और पीड़ाओं का परम समाधान बन सकता है. इसलिए हम कैसे पता लगायें कि प्रेम क्या है ? केवल प्रेम की परिभाषा दे कर ? धर्म और संप्रदाय एक ढंग से परिभाषा देते हैं, समाज दूसरी तरह से और इस प्रकार प्रेम अनेक भिन्नताओं और विकृतियों का शिकार हो जाता है. क्या प्रेम से हमारा तात्पर्य है किसी की पूजा करना, किसी का संग-साथ और दोस्ती, किसी के साथ बिस्तर पर सोना, भावनात्मक आदान-प्रदान ?

पूरे संसार में तथाकथित साधक और संत पुरूषों ने जोर दे कर कहा है कि औरत को देखना सर्वथा गलत काम है, कि अगर आप काम-वासना का सुख लूटते हैं, तो आप परमात्मा के निकट भी नहीं आ सकते. इसलिए वे स्वयं इस पर नियंत्रण और विजय प्राप्त करने में लगे रहते हैं. किंतु तथ्य यही है कि काम-वासना निरंतर उन्हें खाये जा रही हैं. संसार की सुंदरता उनके भीतर वासना जगाती है, तो वे अपनी आंखे फोड़ लेते हैं. उनमें से कुछ लोग तथाकथित साधना में आगे बढ़ने के लिए अपनी जीभ तक काट लेते हैं. इस तरह वे जगत की सुंदरता और जीवन की सहजता की हत्या कर देते हैं. ऐसे लोग हृदय और मन से बिलकुल कंगाल हो चुके हैं, मर चुके हैं. ये शुष्क इनसान हैं. इन्होंने सौंदर्य को अपने जीवन से निष्कासित कर दिया है, क्योंकि सौंदर्य कहीं-न-कहीं औरत से जुड़ा है.

क्या प्रेम को सांसारिक अथवा पवित्र, मानवीय अथवा दिव्य की कोटियों में बांटा जा सकता है ? या प्रेम केवल प्रेम है ? क्या प्रेम किसी एक के प्रति ही होता है, बहुतों के प्रति नहीं-? अगर मैं कहूं, मैं आपसे प्रेम करता हूँ, तो क्या यह प्रेम केवल आपके लिए है, दूसरों के लिए नहीं ? क्या प्रेम वैयक्तिक है या अवैयक्तिक ? नैतिक है या अनैतिक ? पारिवारिक है या सामाजिक ? अगर आप का प्रेम पूरी मानव जाति से है, तो क्या आपको व्यक्ति विशेष से प्रेम हो सकता है ? क्या प्रेम भावुकता है ? क्या इसका संबंध भावनाओं से है ? क्या प्रेम सुख और वासना है ? ये सभी प्रश्न और शंक़ाएं इस बात का संकेत देती हैं कि प्रेम के बारे में हमारे कुछ निश्चित विचार और धारणाएं हैं. यह ऐसा होना चाहिए, वैसा नहीं होना चाहिए, अर्थात् यह हमारी संस्कृति द्वारा विकसित एक संहिता या नमूने के अनुसार होना चाहिए.

तो यह खोजबीन करने के लिए कि प्रेम क्या है, सबसे पहले हमें हम पर जमी हुई धूल-गर्द की उस परत सो साफ करना होगा जो सदियों-सदियों में आदर्शों और विचारधाराओं ने जमा की है - कि प्रेम ऐसा होना चाहिए, प्रेम ऐसा नहीं होना चाहिए, यह ऐसा है, लेकिन इसे ऐसा नहीं होना चाहिए. जब इस ढंग से हम चीजों को देखते हैं तो यह महज जीवन के तथ्यों से आंख चुराने की चालबाजी बन कर रह जाती है.

तो अब मैं कैसे मालूम करूं कि यह लौ और लपट क्या है जिसे हम प्रेम कहते हैं ?

सरकार कहती है, अगर तुम्हें अपने देश से प्यार है तो जाओ, मरो और मारो. क्या यह प्रेम है ? धर्म कहता है, अगर तुम्हें परमात्मा से प्रेम है, तो छोड़ो काम-वासना को. क्या यह प्रेम है ? प्रेम इच्छा और आसक्ति है ? आंख मूंद कर नहीं मत कहें. हममें से अधिक

लोगों के लिए यही प्रेम है - वासना और सुख. सुख जो इंद्रियों द्वारा प्राप्त किया जाता है, सुख जो काम-वासना के आकर्षण और इसकी पूर्ति से मिलता है. मै काम-वासना का विरोधी नहीं हूं, लेकिन काम-वासना है क्या ? यही कि वहां आपका 'स्व' पूर्णतः विसर्जित हो जाता है. वहां आपका 'मैं' तिरोहित हो जाता है. इसलिए वहां आपकी समस्या, चिंता और परेशानी कुछ भी नहीं बचती, लेकिन यह सब क्षण भर के लिए ही. फिर आप उपद्रव से भरी अपनी पुरानी दुनिया में लौट आते हैं. काम-वासना के इस सुख को आप बार-बार दोहराना चाहते हैं ताकि आप आत्म-विस्मृति की उस स्थिति में पुनः पहुंच जायें.

जब भी कोई व्यक्ति पत्नी को अपने प्रेम का विश्वास दिलाता है तो दरअसल वह यह कह रहा है, जब तक तुम मेरी बन कर हो मैं तुम्हें प्रेम करता रहूंगा, लेकिन जिस क्षण तुम मेरी नहीं हो, मैं तुमसे नफरत करने लगूंगा. जब तक मुझे इस बात का भरोसा है कि तुम मेरी काम-वासना और अन्य प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा कर सकती हो, मेरा प्रेम तुम्हारे लिए बना रहेगा, लेकिन जिस क्षण तुम मेरी मांगो की पूर्ति नहीं कर सकतीं, उसी क्षण मैं तुम्हें चाहना बंद कर दूंगा. इस तरह आप दोनों के बीच सदा एक विरोध और अलगाव बना रहता है. और जब आप किसी दूसरे से पृथक और अलग महसूस करते हैं, तो वहां प्रेम कहां ! लेकिन अगर आप अपनी पत्नी के साथ इस तरह जी रहे हैं कि विचार आपके भीतर परस्पर विरोधी स्थितियां और अनंत लड़ाइयां नहीं पैदा करता, तब शायद आप जान सकेंगे कि प्रेम क्या है, तब आप और आपकी पत्नी दोनों पूर्णतः मुक्त होंगे. लेकिन अगर आप अपने सारे सुख के लिए उस पर निर्भर हैं, तो आप उसके दास और गुलाम हैं, इसलिए अगर कोई व्यक्ति सचमुच प्रेम करना चाहता है, तो वह इस बात का खयाल रखे कि वहां मुक्ति होनी चाहिए केवल दूसरे से नहीं बल्कि स्वयं से भी.

इस प्रेम में जहां किसी की हो कर रहना या किसी का बन कर जीनेवाली बात है अर्थात् जब मनोवैज्ञानिक धरातल पर आप अपना आहार और पोषण दूसरे से पाते हैं और उस पर निर्भर रहते हैं, तो वहां केवल चिंता, अपराध-भाव, ईर्ष्या और भय होता . और जब तक भय है तब तक प्रेम का अस्तित्व नहीं हो सकता. दुख से बोझिल मन कभी नहीं जान पायेगा कि प्रेम क्या है ! भावुकता का प्रेम से कुछ लेना-देना नहीं है. इसी तरह प्रेम का इच्छा और सुख से भी कोई संबंध नही है.

प्रेम विचार की उपज नहीं है. विचार अतीत है.आप ईर्ष्या के चारों ओर या भीतर

प्रेम का पौधा नहीं लगा सकते. ईर्ष्या भी तो अतीत से जुड़ी है. प्रेम तो केवल सक्रिय वर्तमान में होता है. मैं प्रेम करूंगा या प्रेम किया है - यह प्रेम नहीं है. अगर आप प्रेम जानते हैं. तो आप किसी के पीछे नहीं भागेंगे. प्रेम किसी की भी आज्ञा नहीं मानता. प्रेम करनेवाला न किसी का आदर करता है, न अनादर.

क्या आपने कभी किसी से सचमुच प्रेम किया है ? या आपको पता नहीं कि प्रेम का क्या अर्थ है ? ऐसा प्रेम जिसमें नफरत, ईर्ष्या और क्रोध न हो, दूसरे के सोचने-विचारने के ढंग में हस्तक्षेप करने की इच्छा न हो, और जिसमें तुलना और निंदा का भाव न हो. ऐसे प्रेम की प्रतीति क्या आपको है ? जहां प्रेम है वहां क्या तुलना हो सकती है ? जब आप किसी व्यक्ति को अपने समूचे हृदय, मन और शरीर से अर्थात् अपने पूरे अस्तित्व और प्राणों से प्रेम करते हैं, तो वहां क्या तुलना के लिए जगह बचती है ? जब उस प्रेम में स्वयं को समग्र रूप से समर्पित और विसर्जित कर देते हैं तब वहां दूसरा बचता ही नहीं.

दुर्भाग्यवश अधिकतर माता-पिता यही सोचते हैं कि वे अपने बच्चों के लिए जिम्मेदार और उत्तरदायी हैं. उत्तरदायित्व से उनका अर्थ बच्चों को यह बताना है कि उन्हें क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए माता पिता चाहते हैं कि उनके बच्चे जब बड़े हों, तो समाज में उनका स्थान सुरक्षित हो. जिसे वे अपना उत्तरादायित्व कहते हैं उससे दरअसल उनका अर्थ है अपने बच्चे को सामाजिक प्रतिष्ठा के योग्य बनाना, क्योंकि वे खुद भी तो उसी की पूजा करते हैं. मुझे ऐसा लगता है कि जहां भी प्रतिष्ठा है वहां शील, शांति और सौंदर्य नहीं है. क्योंकि प्रतिष्ठित लोगों को केवल एक पक्का बुर्जुआ बनने से मतलब होता है. ये लोग जब अपने बच्चों को सामाजिक ढांचे के अनुकूल अर्थात् उसका एक अंश बनने के लिए तैयार करते है, तो ये युद्ध, संघर्ष और क्रूरता की ही नींव मजबूत कर रहे होते हैं.क्या आप इसे ही प्रेम और देखभाल करना कहते हैं ?

सच्चे अर्थों में बच्चों की देखभाल करना वैसा ही जैसे आप एक नये रोपे गये पेड़ या पौधे की देखरेख करते हैं. - उसकी आवश्यकताओं का आप ध्यान रखते हैं, समय पर पानी देते हैं, उसके चारों ओर की मिट्टी को साफ-सुथरा और दुरूस्त रखते हैं. कहने का मतलब यह कि आप पूरी नरमी और सावधानी के साथ उसकी देखभाल करते हैं. लेकिन जब आप अपने बच्चों को समाज के अनुकूल बनने के लिए तैयार करते हैं, तो वस्तुतः आप उन्हें मरने और मारने के लिए तैयार कर रहे हैं.

अगर आपका कोई प्रिय व्यक्ति मर जाता है, तो आप आंसू बहाते हैं. ये आंसू अपने लिए बहा रहे हैं या उसके लिए जो चल बसा ? आप अपने लिए रो रहे हैं या दूसरे के लिए जो चल बसा ? आप अपने लिए रो रहे हैं या दूसरे के लिए ? क्या आप कभी दूसरे के लिए रोये हैं ? आपका बेटा जब युद्ध के मोर्चे पर मारा जाता है, तो क्या आप रोते है ? आप रोते जरूर हैं, लेकिन वे आंसू आत्म-दयनीयता के कारण निकलते हैं या इसलिए कि एक मनुष्य मारा गया ? अगर आप आत्म-दयनीयतावश रो रहे हैं, तो इस आंसूओं का कोई मूल्य नहीं, क्योंकि तब आपका मतलब अपने आपसे है. आप इसलिए रो रहे हैं क्योंकि उस व्यक्ति से आप हमेशा के लिए बिछुड़ गये जिससे आपने इतनी आशाओं और उम्मीदों के साथ नेह लगाया था।

अगर आप निरीक्षण करें, तो यह सब आप अपने भीतर घटित होते देख सकते हैं. और देखने का अर्थ है, यह सब एक साथ एक झलक में पूरा-पूरा देखना यह नहीं कि बैठ कर इत्मीनान से इनमें से एक-एक का विश्लेषण किये जा रहे हैं. आप एक क्षण में इस क्षुद्र और बनावटी चीज यानी 'मैं' के पूरे ढांचे और स्वरूप को देख सकते हैं - मेरा परिवार, मेरा देश, मेरा धर्म, मेरा विश्वास, मेरा सुख, मेरा दुख-सारी की सारी कुरूपता और यह सब आपके भीतर है. जब आप इस सब को मन से नहीं बल्कि अपने मर्म से अर्थात् हृदय की अतल गहराइयों से देखने लगते हैं, तो अनायास आपके हाथ में वह कुंजी आ जाती है जो सारे दुखों का अंत कर देती है.

दुख और प्रेम में कोई संबंध नहीं है. विडंबना यह है कि धार्मिक जगत में लोगों ने दुख को आदर्श का रूप दे रखा है. हिंदु साधु-संन्यासी उपवास इत्यादि अनेक विधियों के द्वारा स्वयं को दुख पहुंचाने की चेष्टा करते हैं. ईसाई जगत में उन्होंने सूली पर दुख को मूर्त रूप में लटका रखा है और उसकी पूजा करते है. उनका आशय यह है कि तुम अगर दुख से बचना चाहते हो तो यही एकमात्र उपाय है. तो देखा आपने धार्मिक जगत का विकृत और शोषणकारी ढांचा !

इसलिए आप जब पूछते हैं कि प्रेम क्या है, तो इसका उत्तर कहीं आपको भयभीत और आतंकित न कर दे ! हो सकता है, प्रेम का अर्थ मनुष्य के जीवन में एक महत् क्रांति हो. यह बसे-बसाये घर-परिवार को तोड़ सकता है, उजाड़ सकता है, आपको यह बोध हो सकता है कि आपने पति या पत्नी या बच्चों को कभी प्रेम किया ही नहीं. जरा आप अपने

भीतर पूछें कि क्या आपने उन्हें प्रेम दिया है। आपने अब तक जो कुछ निर्मित किया है, उसे शायद आपको ध्वस्त कर देना पड़े, शायद आप पुनः कभी मंदिर न जा पायें.

जैसे-जैसे कोई प्रेम के वास्तविक अर्थ की खोज करता जाता है, वह पाता है कि भय प्रेम नहीं है, निर्भरता प्रेम नही है, ईर्ष्या प्रेम नहीं है, किसी पर मिल्कियत और अधिकार प्रेम नहीं है, उत्तरदायित्व और कर्तव्य प्रेम नहीं है, किसी का प्रेम न पाने का दर्द भी प्रेम नहीं है. प्रेम घृणा का विपरीत नहीं है, जैसे विनम्रता अहंकार का विपरीत नहीं है. तो अगर आप इन सबको स्वयं से दूर कर सकें, जोर-जबरदस्ती से नहीं, बल्कि धो-पोंछ कर अपने से अलग कर सकें,

जैसे पेड़ के पत्तों पर जमी धूल को वर्षा धो कर अलग कर देती है - तब शायद आप अकस्मात् प्रेम के इस अद्भूत और अनूठे पुष्प तक पहुंच जायें जिसे पाने के लिए हर मनुष्य लालायित है.

अगर आपने इस प्रेम को नहीं पाया है - इसकी केवल कुछ बूंदे नहीं बल्कि प्रचुरता में, अर्थात् यदि आप प्रेम से लबालब नहीं भरे हैं - तो संसार का विनाश होना ही है. बोद्धिक रूप से तो आप जानते हैं कि मनुष्य के बीच एकता अत्यंत आवश्यक है और प्रेम इसका एकमात्र मार्ग है, लेकिन प्रेम कैसे करें यह आपको कौन बतायेगा ? क्या कोई जानकार और विशेषज्ञ या विधि और पद्धति आपको सिखा सकती है कि प्रेम कैसे करें ? अगर कोई प्रेम करना सिखाता है, तो वह प्रेम नहीं है. क्या आप कह सकते हैं, मैं प्रेम का अभ्यास करूंगा, मैं प्रतिदिन बैठ कर इस पर चिंतन और मनन करूंगा, मैं भद्र और दयालु होने का अभ्यास करूंगा तथा दूसरों का ध्यान रखने के लिए मैं स्वयं को बाध्य करूंगा ? क्या आपको लगता है कि प्रेम करने के लिए आप स्वयं को अनुशासित कर सकते हैं ? जब प्रेम करने के लिए आप अनुशासन और इच्छाशक्ति का प्रयोग करते हैं, तो प्रेम आपकी पहुंच बाहर चला जाता है. प्रेम की किसी प्रणाली और पद्धति को अपनाने पर अधिक-से-अधिक यही आशा की जा सकती है कि आप में थोड़ी समझदारी, उदारता और अंहिसा आ जाये, लेकिन इस सबका प्रेम से कुछ भी लेना-देना नहीं है.

इस मरूस्थलरूपी उजाड़ जगत में प्रेम है ही नहीं, क्योंकि यहां सुख और चाह की ही सबसे बड़ी भूमिका है और प्रेम के बिना आपके जीवन का एक-एक दिन निरर्थक है. अगर

सौंदर्य न हो तो आपके पास प्रेम भी नहीं हो सकता. सौंदर्य वह नहीं है जिसे आप देखते हैं अर्थात् सौंदर्य का अर्थ एक सुंदर पेड़, एक सुंदर चित्र, एक सुंदर भवन या एक सुंदर नारी नहीं है. सौंदर्य तभी होता है जब आपके हृदय और मन को पता होता है कि प्रेम क्या है. प्रेम और सौंदर्य के बोध के बिना सद्गुण का अस्तित्व नहीं होता. इसे आप अच्छी तरह जान लें कि आप चाहे जो कुछ भी करें - समाज-सुधार करें, गरीबों को खाना खिलायें-आप केवल शरारत और उपद्रव में ही वृद्धि करेंगे, क्योंकि प्रेम के अभाव में आपका अपना हृदय और मन केवल कुरूपता और दरिद्रता से भरा है. अतः आपके पास देने और बांटने को है ही क्या ? लेकिन एक बार जब आप प्रेम और सौंदर्य से भर जाते हैं तो फिर आप जो कुछ भी होता है वह व्यवस्थित और सुसंगत होता है.

अब हम उस बिन्दु पर पहुंच गये हैं जहां हमें पूछना है. क्या बिना अनुशासन, संकल्प और जोर-जबरदस्ती के या बिना किसी पुस्तक, गुरू और मार्गदर्शक के मन अनायास ही प्रेम का साक्षात्कार कर सकता है ? जैसे कभी अकस्मात् सूर्यास्त के अभूतपूर्व सुंदर दृश्य से साक्षात कार हो जाता है !

मेरी दृष्टि में एक चीज परम आवश्यक है और वह है प्रयोजनरहित उत्कटता और आवेग-वह आवेग नहीं जो प्रतिबद्धता या लगाव से पैदा होता है या जो वासना और राग है. जो व्यक्ति यह नहीं जानता कि उत्कटता और आवेग क्या है वह कभी प्रेम को नहीं जान पायेगा. क्योंकि प्रेम तभी घटित हो सकता है जब पूर्ण आत्म-विसर्जन हो !

जो मन कुछ खोज रहा है, कुछ पाने के लिए प्रयत्नशील है, वह उत्कटता और आवेग से भरा नहीं होता, और प्रेम का साक्षात्कार करने के लिए यह आवश्यक है कि इसे पाने की हमारी सारी खोज और दौड़-धूप बंद हो जाये-यह साक्षात्कार अनजाने में और अकस्मात् हो अर्थात् यह किसी अनुभव और प्रयास की परिणाम न हो. आप पायेंगे कि ऐसा प्रेम समय से परे है, ऐसा प्रेम वैयक्तिक और अवैयक्तिक दोनों है. यह एक के लिए है और अनेक के लिए भी. यह एक फूल की सुगंध के समान है - आप चाहें तो इसकी सुगंध लें या इसकी ओर ध्यान न दें, सुगंध तो फूल में रहेगी ही यह फूल हर व्यक्ति के लिए है और उसके लिए तो है ही जो इस फूल के निकट आने का कष्ट करता है और आनंद से विभोर हो कर इसको निहारता है और इसकी सुगंध को अपनी सांसों में बसा लेता है. फूल बिना किसी

भेदभाव के अपनी सुगंध सबको लुटाता है. अगर सुगंध लेनेवाला कोई न हो तो भी इसकी सुगंध में कोई कमी नहीं होती.

प्रेम कुछ ऐसी चीज है जो नयी, ताजा और जीवंत है. इसका न कोई अतीत है और न भविष्य. यह विचार के तनाव और अशांति से बिलकुल परे है. केवल निष्कलुष मन जान सकता है कि प्रेम क्या है और ऐसा निष्कलुष मन इस बेतुके संसार में भी जी सकता है जो निष्कलुष नहीं है. इस असाधारण वस्तु अर्थात् प्रेम को मनुष्य ने अनंत उपायों द्वारा खोजा है - पूजा-अर्चना और भक्ति के द्वारा, त्याग और बलिदान के द्वारा, आपसी संबंध और मित्रता के द्वारा, काम-वासना और यौन संबंधों के द्वारा, हर तरह के सुख और दुख में भी उसने प्रेम को तलाशने की कोशिश की है लेकिन प्रेम तभी घटित होता है जब विचार अपने आपको समझ लेता है और फिर सहज और स्वाभाविक रूप से मिट जाता है, समाप्त हो जाता है. तब प्रेम का कोई विपरीत नहीं होता. तब प्रेम में कोई संघर्ष और द्वंद्व नही होता.

आप पूछ सकते हैं, अगर मुझमें ऐसा प्रेम घटित हो जाये, तो मेरी पत्नी, मेरे बच्चों, मेरे परिवार का क्या होगा ? उन्हें तो सुरक्षा चाहिए ही. आप ऐसा प्रश्न इसीलिए उठा रहे हैं, क्योंकि आपने कभी विचार और चेतना के क्षेत्र के बाहर कदम नहीं रखा है बस एक बार आप इस क्षेत्र के बाहर चले जाएं। चले जायें, आप ऐसा प्रश्न फिर कभी नहीं करेंगे, क्योंकि तब आप जानेंगे कि वह प्रेम क्या है जिसमें विचार मिट जाता है और इसीलिए समय भी. आप यह सब चमत्कृत और सम्मोहित हो कर भले ही पढ़ लें, लेकिन वस्तुतः विचार और समय के पार चले जाने-जो अपने आप में दुख के पार चला जाना है- का अर्थ है, एक भिन्न आयाम का एहसास और बोध जिसे प्रेम कहते हैं.

लेकिन आप नहीं जानते कि इस अद्भूत और अनूठे झरने के पास कैसे आयें ! तो आप क्या करेंगे ? जब आपको पता नहीं होता कि क्या करना है तो आप कुछ नही करते. एकदम कुछ नहीं. क्या ऐसा नहीं है ? तब आप अपने भीतर पूर्णतः शांत होते हैं. इसका अर्थ है आपकी सारी भागदौड़ खत्म ! आप कुछ खोज नहीं रहे हैं, कुछ चाह नहीं रहे हैं.आपके भीतर का केन्द्र मिट गया. और यही शुभ घड़ी है प्रेम के प्रकट होने की.

-----o-----

(पुस्तक समीक्षा)

आँखन देखी का सच

('अब न चुभन देते हैं, कांटे बबूल के' के विशेष संदर्भ में)

- डॉ. इन्द्र बहादुर सिंह

ए-1, ऐश्वर्या, पवई, मुंबई 400076

- कपिल देव सिंह चौहान

ग्राम - गाड़ा, पोस्ट - सीधी, जिला - सीधी (मध्यप्रदेश)

''असीम अभावों के बियाबान में,
कितने जख्मी हुए सपन।
पीड़ाओं ने दी इसे गवाही,
चेहरे में उभरे कई शिकन॥
मिले नहीं हैं, मेरे ख्वाबों को,
अब तक कोई ठोस धरातल।
वरना उसके हर चप्पे पर,
मुस्कानों की फसल उगाता॥'' अब न चुभन देते हैं, काँटे बबूल के, पृ.8

मानव और उसका जीवन ही मनुष्य के आकर्षण का सबसे प्रमुख केन्द्र है। व्यक्ति नाना अन्तर्वृत्तियों के माध्यम से अपने आपको अभिव्यक्त करता है। जिस प्रकार गति जीवन का प्रमुख लक्षण है उसी प्रकार गतिशीलता साहित्य का भी लक्षण है। साहित्य जीवन का सहवर्ती है; क्योंकि जीवन विविधता लिए हुए है फिर साहित्य में भी विविधता क्यों न हो। मानव चेतना की अभिव्यक्ति का दूसरा नाम ही साहित्य है। मानवीय चेतना के इतिहास के प्रथम-चरण में मानव-हृदय संवेदनात्मक-रागमूलक वृत्तियों की प्रमुखता लेकर चला परन्तु ज्यों-ज्यों जीवन जटिल होता गया, विचार तत्व को प्रमुखता मिली और चेतना में समकालीन बोध अभिव्यक्ति खोजने लगी। दादूलाल जोशी ''फरहद'' की प्रस्तुत काव्य-कृति 'अब न चुभन देते हैं, काँटे बबूल के' इसी समकालीन बोध की अभिव्यक्ति है। यथा -

''मेरे घर के उच्चासन से,
आजकल
एक विशेष प्रकार की बदबू
उठने लगी है।
दीप - धूप से पूजन करने का वह स्थान

जहाँ एक जिन्दा छिपकली सड़ रही है।
बदबू ! धीरे -धीरे
कमरे में, आँगन में फैल चुकी है
जाने क्यों ?
मेरे परिवार के सदस्य
कुछ नहीं करते ?
उनमें किसी तरह की प्रतिक्रिया नहीं।'' (वही, पृ.44)

''व्यक्ति की समस्त मानसिक शक्तियों एवम् प्रवृत्तियों की पारस्परिक घनिष्ठ क्रिया-प्रतिक्रियाओं की समन्वित इकाई व्यक्तित्व है। व्यक्तित्व उनकी पूर्व-परम्परा उसके वातावरण एवम् उसके मानसिक एवम् बाह्य द्वन्द्व की क्रिया-प्रतिक्रिया का होता है। व्यक्तित्व व्यक्ति की वह विशेषता है जो उसे अन्य व्यक्तियों से भिन्न करती है। उसके निजत्व का स्वरूप उसकी शिक्षा, संस्कृति के माध्यम से होता है किन्तु इस निर्माण में व्यक्ति का जितना हाथ रहता है उतना किसी अन्य का नहीं। इस प्रकार व्यक्तित्व स्वयम् उपार्जित तत्व है, उसके अस्तित्व में समस्त सम्बन्धों और प्रभावों की समष्टि है।''

दादूलाल जोशी का व्यक्तित्व संघर्षों से बना है। उन्होंने अपने भीतर और बाहर के व्यक्तित्व को अलग-अलग नहीं रखा है। उनकी स्वयम् की लेखनी ने ही उनके भोगे हुए यथार्थ की तस्वीर प्रस्तुत की है -

''उनका जीवन भी तो
उस कमीज की तरह होती है
जिसमें लगे होते हैं
अभावों के अनगिनत पैबन्द
ढ़ो रहें हैं-
शिक्षा का वही पुराना गट्ठर
पिछली कई सदियों से
पर उतारा किसने है ?
वे अब भी लदे हैं।'' (वही, पृ.55)

कवि एक स्थिति में साधारण-सा व्यक्ति होता है किन्तु उस असाधारण व्यक्ति के अन्तः स्थल में समष्टिगत संवेदना का सिन्धु लहराता है -

“ कितना हास्यास्पद है कोहरे का अहम् ?
रोशनी के टुकड़े को पचा लेने की नपुंसक साजिश में रत
कोहरा !
साँसो में घुल-घुलकर
फेफड़े से होता हुआ नशों तक
चाटने लगता है, पहुँचकर
लहू की गरमाहट !” (वही, पृ. 62)

समकालीन परिवेश में जीने वाले व्यक्ति का प्रतिदिन ऐसे कोहरे से परिचय होता है। वह इसके कुकृत्यों को, इसके शोषक प्रवृत्ति को अच्छी तरह जानता व समझता है फिर भी वह पानी की तरह, तरल व स्वच्छ पसंदीदा बोतलों में हर बार विनम्रता पूर्वक परम्परित आकार ग्रहण करता है। कवि इस मानसिकता पर प्रहार करते हुए कहता है कि यह प्रवृत्ति शोषकों से जुड़ने की है और उसके सानिध्य में रहकर सुख प्राप्त करने की है। 'आग की तासीर' कविता में कवि ऐसे चाटुखोरों को खूब लताड़ा है। वह ऐसे व्यक्तियों को बेनकाब करता है जो शोषकों की कामनानुसार बर्फ की सिल्लियाँ बनते हैं। भारतीय समाज की तरफ से वह ऐसे शोषकों को एक तरह से सचेत करता हुआ कहता है -

“देशकाल और परिस्थितियों की
तब्दीलियों को न पकड़ने वाले
दयनीय दिमाग वाले बन्धु
आखिर तुम चाहते क्या हो ?
बहुत कुछ बन जाने के बावजूद
आज तक हम
नहीं बन सकें हैं - तो आग
केवल आग।
वैसे तुम जानते ही हो
क्या होती है - आग की तासीर।” (वही, पृ 66.)

जोशी प्रगतिशील विचारों वाले चिन्तक कवि हैं। किन्तु उनका आग बनने का आशय तोड़-फोड़ लूट-पाट, हत्या और विध्वंस नहीं हैं बल्कि चेतना का जागरण होना, ज्ञान का प्रस्फुरण होना और सत्य को पहचानना है। जो सत्य को पहचानेगा वह अपनीयक्ति

का मार्ग स्वयं खोज लेगा। इसलिए वह आग की तासीर का मात्र अहसास कराते हैं, न की आम जनता को आग बनने की प्रेरणा देते हैं; कवि उपदेश देना नहीं चाहता। दूसरों की तरफ ऊँगली उठाने के पहले वह अपने गरेबान में झाँककर देखने की बात करता है -

''किसी की बुराई करने का अधिकार
तो उसे है,
जो स्वयम् चरित्रवान है।
और जो
स्वयम् चरित्रवान है
उसकी पहचान है
कि वह किसी की
बुराई करता ही नहीं।'' (वही, पृ.51)

कवि ने कबीर की तरह इस समाज को देखा है। उसका पूरा व्यक्तित्व तेज, तर्रार एवम् क्रान्ति धर्मी है। वह समाज की रचना एवम् उसके विकास - क्रम को गौतम बुद्ध, सिद्ध नाथ व सन्तों की चिन्तन दृष्टि से देखते हैं। महात्मा फुले, अम्बेडकर का अध्ययन-मनन करते है। फलतः वह व्यक्ति या घटना को पकड़कर एक ऐसा सर्वमान्य ताना-बाना बुनते हैं कि उसमें पूरा समाज-व्यवस्था और सभ्यता का ढ़ोंग उजागर हो जाता है। इस प्रकार जोशी जी एक गुरू घासीदास की पंथी मानस लेकर हमलावर अंदाज में निर्मम प्रहार करते हैं। उनके पास वही पलीता है, जो वे बुद्ध, कबीर, घासीदास के पास देखते थे और जिनसे इन सन्तों ने अपने समय की कुरीतियों को आग लगाते फिरते थे। इस तरह कहा जा सकता है कि जोशी जी एक प्रतिबद्ध लेखक हैं और किसी व्यक्ति की वैचारिकता ही उसकी आस्थाएँ और संस्कार ही उसके व्यक्तित्व एवम् कृतित्व का मुख्य निष्कर्ष होती हैं। जोशी की कविताएँ ईमानदार, जनपक्षधर व्यक्तित्व से प्रस्फूटित हैं। इस कवि व्यक्तित्व ने अपने प्रगतिशील स्वभाव और विचारों के लिए निश्चित रूप से बहुत कुछ सहा होगा। दक्षिणपंथी तत्वों से उत्पीड़ित, शारीरिक, मानसिक यातना भोगने वाले जन का पहरूआ जोशी इस विषम और विसंगत व्यवस्था में अपने अस्तित्व और व्यक्तित्व की रक्षा के लिए लगातार संघर्षरत् हैं जो उनकी कविताओं से परिलक्षित होता है -

''तीर की तरह सीधा
साफ और समतल रास्ता
मेरा नहीं है।.......

रास्ता मेरा नहीं है
गिट्टियाँ मैंने कूटी हैं
इमारत मेरी नहीं है
ईंट और गारे
मेरे हाथों उठाये गये हैं। ....
गेहूँ और धान की बलियाँ
मेरी नहीं हैं
पसीना मेरा बहा है
पौधे मैंने उगाये हैं
खेत मेरा नहीं है।
कुदाल मैंने चलायी है
मेड़ मैंने बनायी है
मेरी बनायी चीजें
मेरी नहीं होतीं।
कब होगी ?'' (वही, पृ. 92, 93)

इस कवितांश को देखने से स्पष्ट होता है कि रचना में योगदान वास्तविकता और यथार्थ से टकराकर होता है। विचारधारा कोई साँचा नहीं है। जिसमें रचना डाली जाये। विचारधारा कवि की दृष्टि होती है। प्रगतिशील दृष्टि के साथ जटिलताओं और अधिक से अधिक विषम परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से अपनी विचारधारा की अनिवार्यता व्यंजित करती है। यथा

'' मेरे गले में चीता के
लम्बे लम्बे दाँत नहीं
आदमी के नन्हें-नन्हें दाँत थे
अब मेरे लिए उस आदमी का
चेहरा पहचानना बाकी था।'' (वही, पृ. 91)

विचारधारा हमारे इतिहास बोध को मूर्तित करती है। वह इतिहास निरपेक्ष नहीं होती उसमें अज्ञात और अनन्त के गुण नहीं होते। विचारधारा भौतिक क्रान्ति को साबित करती है। विचारधारा मानवीय होती है। वह मानव को अन्याय, अत्याचार, शोषण, उत्पीड़न और तरह-तरह के अपराध के विरूद्ध खड़ा करती है और व्यक्ति को सामाजिक मनुष्य में बदलती है। जोशी जी की कविताओं में विचार और दृष्टि के प्रति गहरा विश्वास है। तभी तो वह लिखते हैं -

"मेरी नजरों में तुम
आग हो
मैं तुम्हें हवा देकर
और तेज करना चाहता हूँ
तुम्हें भभकाना चाहता हूँ
ताकि तुझमें लम्बी-लम्बी लपटें उठें
तुम्हारी लपटें उस कोने तक फैले
जिस कोने तक कोई कौआ
आदमी के हिस्से की रोटी छीनकर उड़ता है।" (वही, पृ.86)

कवि आग की लपटों को उस ध्वनि का पीछा करने को कहता है जो किसी आदमी को छोटा कहकर, उसकी माँ का अपमान करके भागी है। कवि की निगाह में सामान्य जन अंगारा है। वह उसे दहकाना चाहता है ताकि वह उन तमाम किताबों तो जला सके जिनमें आदमियत की विकृत परिभाषा दी गयी है और जो आदमी को नस्लों में विभक्त करने की वकालत करती हैं। कवि जनता को स्वयम् प्रज्जवलित होने का आह्वान करता है; क्योंकि उसकी ज्वलनशीलता से -

"महाविनाश के बीज को
अंकुराने में उद्यत
उन तमाम दलदली भेजा को
सुखाकर कड़ा कर सके
तुम्हारा धुआँ
उन लोगों की साँसों को
अवरूद्ध कर सके
जो इस हरी - भरी धरती पर
बारूद की परत-दर-परत
बिछाकर
मुस्कानों को चीखों में बदल देने की
साजिश में रत हैं।" (वही, पृ. 87)

दादूलाल जोशी एक पूर्ण कवि हैं। इसलिए वह जहाँ सामाजिक विद्रूपताओं का वर्णन करते हैं और समाज को परिवर्तित करने के लिए आग को तेज करना चाहते हैं वही उन्हें यह भी

विश्वास है कि ये दरख्त, पेड़, पौधे जागेंगे -

"सूरज
धीरे - धीरे बढ़ रहा है
उसे विश्वास है
एक दिन टूटेगी
जंगल की नींद
एक दिन जागेंगे
दरख्त, पेड़ पौधे।" (वही, पृ. 81)

जोशी जी ने प्रकृति से सम्बन्धित कविताएँ भी लिखी हैं 'बसंत का स्वागत' 'वासंती गीत' 'मानसून', 'वसंत एक बिम्ब', 'बादल,नदी,हवा', 'कोहरा' आदि में प्रकृति का बड़ा ही सजीव वर्णन किया है। कवि नारी को भी दलित वर्ग में रखकर ही प्रश्न पर प्रश्न पूछता है। बरसात में भीगते इंसानों को देखकर वह तड़प उठता है। गरीबी-भुखमरी का वर्णन वह नागार्जुन की शैली में उसी स्तर से करता है -

"कितनी काली और भयावह होती है
गहरा गयी रातें
जब चूल्हे की राख
एक लम्बे समय तक ठिठुरती रहती है।
और सारे बर्तन
मुँह फाड़े
औंधे पड़े
भूख, अभावों के कोलाज बनाते हैं।
घिर आते हैं
दुख के मेघ
जादूगर की माया-सी
बहुत अँधेरी
बहुत काली।" (वही, पृ. 79)

कवि तटस्थ या शोषक-शासक वर्ग का टहलुआ नहीं है। वह जनता के बीच का, जनता का, जनता के लिए लिखने वाला कवि है। तभी तो एक तरफ वह कवि मित्रों को लताड़ता है, तो दूसरी तरफ अपनी जनपक्षधरता को स्पष्ट करते हुए कहता है -

“ यह कैसे कह दूँ
कि रोशनी को
अंधी काली गुफा में
कैद करने वालों के खिलाफ
नहीं बोलेंगे
स्लेट के जवान अक्षर
कल अक्षर शब्द बनेंगे
शब्द बनेंगे भाषा।
भाषा तब्दील होगी तीखे औजारों में
तब लाएँगें सूरज को गुफा से
मुक्त करेंगे उनकी पकड़ से
दहक उठेगा धरती का सीना
कटते देर न होगी
गहरा गयी मेघ-माया की रात” (वही, पृ. 79)

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि जोशी जी कविताओं में उस व्यवस्था को बदलना चाहते हैं जिसमें मनुष्य अर्थहीन हो चुका है। वे मनुष्यता के प्रति किये जाने वाले हर षड्यंत्र के विरूद्ध दिखायी पड़ते हैं। कवि, मानवतावादी हैं, मगर वैज्ञानिक मानवतावादी है। मनुष्य केजीवन से उसका सरोकार है इसलिए वह यर्थाथवादी है, मगर वैज्ञानिक यर्थाथवादी है ; वह जीवन के प्रति केवल भावात्मक प्रतिक्रिया न करके वैज्ञानिक व्याख्या और विश्लेषण करता है । वह जानता है कि शुभकामना से अर्थ शास्त्र के नियम नहीं बदलते विलाप से अन्याय समाप्त नहीं होता, कीर्तन से हृदय परिवर्तन नहीं होता; क्योंकि वहाँ हृदय है ही नहीं। कवि ने इस संकलन को सुधार के लिए नहीं, अपितु बदलने के लिये लिखा है। उसकी इस रचना के माध्यम से पुरजोर कोशिश है कि जन चेतना में हलचल आये।

इस संग्रह में काव्य-शिल्प अपने वस्तु के अनुकूल है। कवि की दृष्टि भाव व शिल्प पर बराबर रही है। समय व लेख की सीमा के कारण शिल्प पर विस्तृत चर्चा नहीं कर पा रहा हूँ। इस संग्रह के काव्य-शिल्प पर पुनः कभी चर्चा करूँगा। अपनी लेखनी को जोशी जी के शब्दों में ही विराम दे रहा हूँ -

“फूलों के घर काँटों का वास हो गया।
पत्थर को भी अब दर्द का अहसास हो गया।।”

--------0--------

दलित स्त्री की जिजीविषा

- लोकेश्वर प्रसाद सिन्हा
शोध छात्र (हिन्दी)
पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)

भारतीय समाज में नारियों को, औरतों को, बेटी को - पत्नी एवं माता के अलावा समाज ने एक पूजनीय स्थान दिया है। उसे दुर्गा, काली एवं सरस्वती कहा गया है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता' कहकर नारी को जहाँ एक ओर आसमान की ऊँचाई पर बैठा दिया गया वही विश्व के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश में समाज के दलित, शोषित, पीड़ित महिला जो आज भी बहिष्कृत जिन्दगी जीने के लिये मजबूर है। स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी जहाँ नारी भय, भूख, गरीबी, लाचारी, आतंक तथा सरकारी भ्रष्टाचार के चलते नारकीय जीवन जीने के लिए अभिशप्त है, वहीं भक्तिकाल में नारी को 'नरक का द्वार' कहकर उसे पाताल में ढकेल दिया गया।

दलित स्त्री, पुरूष की दासता में रहकर सदियों से कराह रही है। परतंत्र नारी की व्यथा सुनने वाला कोई नही है। नारी का परिवार में कोई स्थान नहीं होता तथा उसकी दुर्दशा किस प्रकार होती रहती है एवं पति, सास-ससुर, देवर आदि की दासता में वह गम खाकर आँसू पीकर घुटती रहती है। आज तक नारी को केवल उपभोग की वस्तु के रूप में देखा गया है। पुरूष की तुलना में उसे हीन और कमजोर बताकर उसे कभी अपनी प्रगति के लिए मौका ही नही दिया गया। दलित स्त्री को जीवन के उपकरणों के समान ही ग्रहण किया है, लेकिन वास्तव में नारी का व्यक्तित्व महान है। नारी पुरूष का शक्ति-स्थान है। नारी के बिना पुरूष का जीवन अधूरा है।

सभ्रांत परिवार (उच्च समाज) की नारी को घर की चारदीवारी के अंदर, सम्मान न मिलता हो, परन्तु उच्च समाज की होने के नाते समाज उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखने के लिए मजबूर है। दलित समाज की स्त्रियों को घर और बाहर दोनों जगह अपमानित होना पड़ता है। दलित महिला को टोनही (डायन) कहकर अपमानित किया जाता रहा है, जबकि सवर्ण समाज की महिलाएँ इसकी शिकार नहीं होती। दलित की औरत सुशील, सुंदर, गुण और व्यवहार में दक्ष होने के बावजूद समाज उसे हेय और घृणा की दृष्टि से देखता है। समाज

की कौन कहे, उसे अपने घर में भी सम्मान नहीं मिलता है।

भारतीय समाज में दलित नारी के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनीतिक, नैतिक, मानदण्डों के मध्य नारी की स्थिति निचले पायदान पर रही है एवं लगभग अपरिवर्तनीय। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में जहाँ दलित महिला प्रताड़ित हैं वहीं दलित स्त्री का संघर्ष दोहरा-तिहरा हो जाता है। आज भी महिलाओं को पूरी मजदूरी नहीं मिलती है; वह ऐसे उद्योगों में कार्यरत रहती है, जहाँ दो वक्त की रोटी के साथ गंभीर बीमारी उपहार में मिलती है। संविधान ने तो स्त्री और पुरूष को समानता का अधिकार दिया है, मगर नारी को आज भी समाज में बराबरी का दर्जा नहीं मिलता है, समान अधिकार नहीं मिलता है, महिला मजदूरी में अंतर पाया जाता है, क्यों ? क्योंकि वह महिला कमजोर और अबला है। इन स्त्रियों के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं है, जो गुलामों की तरह जीने की सजा सदियों से पा रही हैं। जो हिंदू होते हुए अपने मंदिरों में नहीं जा सकतीं, जो उनके साथ तालाब और कुओं में पानी नहीं भर सकती और जो उनके साथ उठ-बैठ भी नहीं सकती। आजादी के प्रौढ़ होने पर भी दलितों की स्थिति आज भी शोचनीय है और तमाशा यह है कि चारों ओर से इस समस्या से जूझने के दावे किए जा रहे हैं। आज की राजनीति कहीं दलित को दलित बनाए रखकर उससे अपने राजनीतिक स्वार्थ की पूर्ति में तो नहीं लगी है, यह भी सोचना पड़ जाता है।

शिक्षा ही वह अस्त्र है जो नारी को अबला से सबला बनाती है, दलित समाज की महिलाओं में शिक्षा 20% से भी कम हैं। केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों ने 'सर्व शिक्षा अभियान' योजनाओं के माध्यम से महिलाओं एवं छात्र-छात्राओं, दलित समाज के लोगों की शिक्षा में सुधार का प्रयास किया परंतु इसका लाभ दलित वर्ग एवं उनकी महिलाओं को नहीं मिला। महिला सशक्तिकरण और महिला जागरण मंच आदि के माध्यमों से महिलाओं को बराबरी का दर्जा देने की मांग चारों ओर से उठ रही है। दलित महिलाओं को शिक्षित करना बहुत जरूरी है। महिलाएँ जब तक शिक्षित होकर अपने अधिकार और कर्तव्य को नहीं समझेंगी, तब तक परिवार या समाज नहीं सुधरेगा, दलित वर्ग की लड़कियों को शिक्षित कर, उन्हें हर क्षेत्र में आगे लाना होगा।

दलित समाज में महिला उत्पीड़न एक गंभीर समस्या के रूप में सामने आ रही हैं। दलित स्त्रियों के साथ अंदर-बाहर हर जगह अत्याचार होता है। घर में घर के सदस्यों द्वारा

और बाहर समाज के द्वारा, क्योंकि वे खेतों, खलिहानों में जहाँ ये काम करती हैं, इन कार्य स्थलों पर भी उनका शोषण होता है। ईंट के भट्ठों पर उनके साथ बलात्कार, सेक्स शोषण तक ही सीमित था, परंतु आज उनके अधिकारों का शोषण बड़े पैमाने पर हो रहा है - मजदूरी, समानता, जमीन जायदाद के अधिकारों का हनन हो रहा है, भेदभाव बढ़ता जा रहा है।

दलितों के उत्थान के लिए शासन विभिन्न कल्याणकारी योजनाएँ आरंभ करता है, पर उनके कार्यान्वयन पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। अफसोस की बात यह है कि सरकारी स्तर पर राजनेताओं द्वारा जो भी प्रयास किए जाते हैं, उनमें गंभीरता कम और दिखावा ज्यादा बलवती रहती है। शासन की योजनाओं का लाभ दलितों के लिए नहीं, बल्कि दलितों के शोषकों के लिए है, क्योंकि शक्ति उन्ही के हाथों में रहती है।

आर्थिक निर्भरता के कारण ही दलित स्त्रियाँ घरों में बंद रहकर दब्बू और निस्सहाय बन गई हैं। वे गुंडों से अपनी रक्षा न कर पाती थीं। एक बार भ्रष्ट की जाने पर वेश्यावृत्ति अपनाने को विवश होती थीं। इस तरह बाहर के व्यभिचार के अलावा वे घर में अनेक प्रकार के व्यभिचार करने को विवश होती थी। ये सब ऐसी गोपनीय बातें हैं, जिनके बारे में कोई कुछ लिखना पसंद नहीं करता। दलित स्त्रियों की सामाजिक पराधीनता का मुख्य कारण उनकी आर्थिक पराधीनता हैं। पर-निर्भरता के कारण ही उन्हें घर की चारदीवारी के भीतर बंद रहकर अनंत अत्याचार सहने पड़ते हैं। उनका कोई प्रतिकार नहीं होता। वे चुपचाप आँसुओं को पीकर रह जाती हैं। उनका जीवन एक अभिशप्त का जीवन बन गया है।

दलित महिलाओं को आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है, इस आर्थिक विपन्नता के कारण अपने परिवार के साथ झुगी-झोपड़ियों में निवास करना पड़ता है, गरीबी व बेरोजगारी की समस्या का सामना करना पड़ता है, इसका कारण रोजगार की कमी, कम पारिश्रमिक व शोषण है। निरक्षरता व अज्ञानता का लाभ उठाकर शोषक उनका शोषण करने से बिल्कुल नहीं हिचकते हैं, अर्थात् गाँवों व शहरों में दलित महिलाएँ आर्थिक अभाव में अपनी जिन्दगी जी रही हैं। उन्हें सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है, इन समस्याओं में रहन-सहन, चिकित्सा, खान-पान, मंदिरापान, स्वास्थ्य, सामाजिक नियंत्रण, यौन रोग व वेश्यावृत्ति आदि प्रमुख हैं।

दलित महिलाओं की स्वतंत्रता ही उनके जीवन की सब दिशाओं का विकास करेगी। हमें सिर्फ उनकी स्वतंत्रता का स्वरूप बतलाना है और यह भी सत्य है कि पुरूषों के निरादर करने पर भी स्त्री-शक्ति का विकास रूक नहीं सकता, न वह अब तक कहीं रूका है। चूँकि पुरूष निराधार स्त्रियों की अपेक्षा इस देश में अधिक समर्थ है, इसलिए हम स्त्री-स्वतंत्रता के कार्य में पुरूषों से मदद करने के लिए कहते हैं, क्योंकि नारी ही भावी राष्ट्र की माता है। भूखी, पीड़ित और पराधीन माता से तेजस्वी, स्वतंत्र और मेधावी बालक-बालिकाएँ नहीं पैदा हो सकते, जिससे राष्ट्र का सर्वांश जर्जर हो जाता है।

दलित महिलाओं के साक्षरता अभियान के तहत प्रौढ़ शिक्षा लागू करना चाहिए, ताकि महिलाओं को साक्षर बनाया जा सके। महिलाओं को शिशु सुरक्षा, गर्भावस्था में सावधानी प पोषण आहार, टीकाकरण, स्वच्छता आदि के संबंध में जानकारी दी जानी चाहिए। दलित महिलाएँ स्वास्थ्य के प्रति लापरवाह होती हैं, उनमें स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता लाने की आवश्यकता है। दलितों के लिए प्रत्येक जिला में पृथक न्यायालय होना चाहिए, ताकि अविलंब न्याय मिल सके। उनके बौद्धिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए ज्ञान-विज्ञान के सारे दरवाजे खोलने होंगे। उन्हें सशक्त व स्वावलंबी बनाने के लिए कम्प्यूटर शिक्षा के साथ-साथ जीवन-यापन के लिए हुनर का प्रशिक्षण देना उपयुक्त होगा। अतः अन्य उपायों के साथ महिला या सबलीकरण की दिशा में उच्चकोटि की शिक्षा का प्रचार-प्रसार प्रभावी कदम सिद्ध होगा जो समतामूलक समाज की स्थापना का मार्ग स्वयमेव प्रशस्त कर सकेगा।

आजादी के इतने वर्षो बाद भी आज भारतीय दलित समाज की स्थिति सम्मानजनक नहीं हो सकी तो इसका सीधा दोष राजनीतिज्ञ तथा संवैधानिक घोषणाएँ करने वाले तथाकथित बुद्धिजीवियों तथा कही न कही दलित समाज के उन अगुआओं पर भी है, कि वे आज तक इस बहिष्कृत समाज की सच्चे अर्थो में आवाज नहीं बन सके।

इस नई सदी में इस बहिष्कृत समाज के भारतीय राष्ट्रीय मुख्य धारा में शामिल होने की इस उम्मीद के साथ कि आने वाले समय में उनके लिये भी उनके हिस्से की जमीन तथा धूप सिर्फ उनकी होगी तथा वे सिर उठाकर इस स्वतंत्र देश के सामान्य नागरिक की तरह जीना सीख सकें। ....फिलहाल यही कामना है।

----o----

(छत्तीसगढ़ी कविता)

मोर दाई

श्रीमती कुसुम वर्मा ''नूतन''
भिलाई नगर

हे मोर दाई !
तंय तो हस अब्बड़ महान !
तोरेच अंचरा म खेलेंव, कूदेंव,
तोरेच अंगरी ला धर के,
डहर म रेंगना सीखेंव.
तंय तो मोर जिनगी के आधार दाई।
तंय मोर गुरू अऊ तंय मोर भगवान।।
पीरा ला पिये पानी असन
रात अऊ दिन
अपन नोनी बाबू मन बर
मयाके अमरित बरसाके
अनमोल रतन बनाये हस।
तंय तो तियाग, तपसिया, शिक्षा अऊ ज्ञान के भंडार दाई।
तंही मोर जिनगी के चमक हस
अऊ तंही मोर जिनगी के शान।।
तोर गोदी म अघात सुख पायेंव
तोरेच छईहां म थिरायेंव
तोर मया ला पाके
मोर जिनगी होगे खुशहाल
मोर रद्दा के पथरा गोंटी,
अऊ कांटा खूंटी ल
अइसे हटाये जइसे बाहरी म दिये बहार दाई
मोर जिनगी ला सुघ्घर गढ़के
बढ़ाये हस तंय मान।।
हे मोर दाई तंय तो हस अब्बड़ महान्।।

-----0-----

परिचय

सत्यध्वज के वरिष्ठप्रतिनिधि

नाम	-	सुभाष चन्द्र कुर्रे
पिता का नाम	-	स्व. सुकलूराम कुर्रे
माता का नाम	-	स्व. शान्ति कुर्रे
जन्म तिथि	-	01.08.1955
शिक्षा	-	एच.एस.एस.सी.
जन्म स्थान	-	ग्राम लालपुर (मांढ़र)
व्यवसाय	-	अनुभाग अधिकारी वित्त एवं लेखा विभाग, भिलाई इस्पात संयंत्र।
जाति	-	सतनामी
धर्म	-	हिन्दू
प्रतिनिधि	-	सत्यध्वज का सन् 1998 से अब तक
प्रतिनिधि बनने का विशेष प्रयोजन	-	सत्यध्वज के प्रचार के लिये, ताकि समाज में सतनाम संदेश सत्यध्वज के माध्यम से पहुंच सके।
रूचियां	-	कम्प्यूटर में प्रोग्रामिंग करना।
प्रेरणा स्त्रोत	-	श्री दादूलाल जोशी ''फरहद'' जी
सम्मान/पुरस्कार	-	सेल/बी.एस.पी. का सबसे उत्कृष्ट पुरस्कार नेहरू पुरस्कार 2004 में। (व्यक्गित) जवाहर लाल नेहरू 2 बार 1994 एवं 1996 में।
पद /जिम्मेदारी	-	1. छत्तीसगढ़ सहकारी साख समिति में कार्यकारिणी सदस्य सन् 1991 से 2001 तक दस साल रहा। 2. वर्तमान में गुरुघासीदास सत्यप्रचारक समिति दल्ली राजहरा का अध्यक्ष।
समाज को संदेश	-	पीछे मत देखो आगे देखो।
पूरा पता	-	55 बी, वन एक्स टाईप, सड़क नं. 8 मध्य शहर, दल्ली राजहरा जिला दुर्ग (छ.ग.) फोन नं. 957748-283917

मुद्रक :- आशा ऑफसेट प्रिंटर्स, सुपेला, भिलाई फोन : 5030566